# औपनिवेशिक भारत में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन : एक अध्ययन

***अजीत सिंह चौधरी**
****डॉ. वीरेन्द्र सिंह चौधरी**

प्रस्तुत शोध पत्र में औपनिवेशिक भारत में हुए सामाजिक – धार्मिक सुधार आंदोलनों पर प्रकाश डाला गया है। ब्रिटिश शासन काल में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों ने सामाजिक रचना, धर्म, रीति–रिवाज व परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। इससे भारत में सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलन का जन्म हुआ। भारतीय समाज को पुनर्जीवन प्रदान करने का प्रयत्न प्रबुद्ध भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक सुधारकों, सुधारवादी, ब्रिटिश गवर्नर जनरलों एवं आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने किया। भारत में समाज और धर्म हमेशा एक दूसरे से जुडे रहे हैं और यहाँ की समाजिक परम्पराएं और रुढियां का आधार धार्मिक व्याख्या है। अतः सामजिक परिवर्तन अैर सुधार के लिए यह आवश्यक था कि धार्मिक मूल्यों और मान्यताओं की तर्कपूर्ण व्याख्या की जाए ताकि उसके आधार पर समाज में वांछित सुधार दाया जा सके। यही कारण है कि भारत में समाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन एक साथ ही चले। शोध पत्र में इसके विकास, कारणों और स्वरूप के साथ–साथ आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है।

**Key Words-** चार्टर एक्ट, सत्यार्थ प्रकाश, सिंह सभा, वेदांत

**प्रस्तावना–**

उपनिवेशवाद से तात्पर्य दो राष्ट्रों के मध्य अधिपत्य ओर अधीनता के इस संबंध से है जिसके मूल में आर्थिक शोषण करने का भाव निहित होता है। कालांतर में आर्थिक शोषण को स्थायी और मजबूत बनाने के लिए उपनिवेश पर शैक्षणिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पकड मजबूत बनाई जाती है तब जाकर उपनिवेशीकरण की यह प्रक्रिया पूर्ण होती है। 18वीं शताब्दी में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके परिणामस्वरूप एक जाग्रति के युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा की भावना ने यूरोपीय समाज को एक गति प्रदान की विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनीतिक, सैनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता एक अग्रणी महाद्वीप था। इसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हए समाज का चित्र प्रस्तुत कर रहा था इस प्रकार अंग्रेजों के रूप में भारत का सामना एक ऐसे समाज से हुआ जो न केवल रंग में श्वेत था बल्कि स्वयं को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ मानता था।

प्रारम्भिक दौर में ईस्ट इंडिया कंपनी की नीति भारत के सामाजिक–धार्मिक विषयों में अहस्तक्षेप की थी। उस समय कंपनी के औपनिवेशिक शासक तात्कालिक व्यवस्थाओं को जारी रखने की मांग करने वाली व्यवहारिकता के साथ–साथ परम्परागत भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का एक भाव भी रखते थे जिसकी झलक हमें वारेन हेस्टिंगज की प्राच्यवाद की नीति में दिखाई देती है इस नीति का अर्थ था संस्कृत और फारसी भाषाओं के अध्ययन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ सिखाने का प्रयास करना तथा शासन संबंधी विषयों में उस ज्ञान का उपयोग करना था। इन्हीं नीतियों के परिणामस्वरूप द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल कलकत्ता मदरसा तथा बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। हेस्टिंग्ज की विजित जनता पर उसी के अनुरूप शासन करने और अंग्लीकरण का विरेध करने की नीति प्राच्यवादी वैचारिक प्राथमिकताओं और राजनीतिक व्यावहारिकता को दर्शाती है क्योंकि उस समय स्थानीय समाजिक रीति–रिवाजों और संहिताओं संबंधी ज्ञान को शासन की स्थायी संस्थाओं के विकास की अनिवार्य शर्त माना जाता था। वारेन हेस्टिंग्ज का कार्याकाल समाप्त होने के बाद भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सावधनीपूर्वक हस्तक्षेप करने की नीति प्रारम्भ होती है जिसका प्रमुख कारण उस समय ब्रिटेन में उभर रही अनेक विचारधाराएँ थी। इन विचारधाराओं में उपयोगितावाद (Utilitarianism), इंजीलवाद (vangelicalism) और मुक्त व्यापार की सोच प्रमुख थी परन्तु कम्पनी सरकार प्रतिकूल भारतीय प्रतिक्रिया की आशंका के कारण अभी भी हस्तक्षेप के लिए पूर्णरूप से तैयार नहीं थी इस प्रकार के हस्तक्षेप के लिए उसे भारतीय समाज के ऐसे समूह की आवश्यकता थी जो भारत में व्यापक सामाजिक सुधारों का समर्थन करे ऐसे ही एक समूह का उदय ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत में अंग्रेजी शिक्षा के

लागू करने के कारण हुआ। इसलिए अंग्रेजी शिक्षा ही भारत में कम्पनी के लिए हस्तक्षेप और प्रवर्तन का पहला और सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया।

भारत में पश्चिमी शिक्षा का वास्तविक आरम्भ 1813 ई. के चार्टर को माना जा सकता है जिसमें ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत आने की अनुमति दी गई और शिक्षा क लिए एक लाख रूपये वार्षिक आवंटन का प्रावधान भी किया गया। यह उस काल के लिए एक अभूतपूर्वक कदम था जब इंग्लैण्ड में भी उस समय शिक्षा के लिए सार्वजनिक धन देने की परम्परा नहीं थी।

ईसाई मिशनरियों और डेविड हेयर जैसे यूरोपीय मूल के व्यक्तयों ने भारत के सभी भागों में विद्यालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया जहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। उसके बाद कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी और 1819 ई. में कलकत्ता स्कूल सोसायटी की स्थापना की गई जहाँ देशी भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। जब राजा राममोहन ने कलकत्ता में संस्कृत महाविद्यालय खोलने के विरोध में गवर्नर जनरल को एक ज्ञापन भेजा तो हवा का रुख निर्णायक रूप से आंग्लवादियों के पक्ष में मुड गया। राजा राममोहन राय भारतीयों की उस पीढी का प्रतिनिधित्व करते थे जिनका यह मानना था कि भारत का आधुनिकीकरण अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य विज्ञान के द्वारा ही संभव होगा। अंततः जब उपयोगितावादी सुधारक विलियम बैंटिक ने 1828 ई. में गवर्नर जनरल का पद संभाला और 1834 ई. में टॉमस बैबिग्टन मैकाले को विधि सदस्य के रूप में उसकी काउन्सिल में शामिल किया गया तब सरकार की शिक्षा पद्धति का रूझान अंग्रेजी शिक्षा की और हो गया। कार्यकारिणी परिषद् का सदस्य होने के अधिकार से 2 फरवरी, 1835 ई. को लार्ड मैकाले ने अपना महत्वपूर्ण स्मरणपत्र (Minute) लिखा और उसे परिषदृ के समय रख जिसमें अंग्रेजी शिक्षा का पक्ष लिया। लार्ड विलियम बैंटिक ने 7 मार्च, 1835 ई. के प्रस्ताव द्वारा मैकाले का दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया कि भविष्य में कंपनी की सरकार यूरोपीय साहित्य को अंग्रेजी माध्यम द्वारा उन्नत करने का प्रयत्न करे और सभी धन–राशियों इसी निमित्त दी जानी चाहिए इस प्रकार जैसा कि सव्यसाची भट्टाचार्य ने कहा कि भारत में एक एक ऐसी नई शिक्षा व्यवस्था का आरम्भ हुआ जिसमें ज्ञान के सृजन का काम तो मालिक देश को सौंपा गया जबकि उसके पुनरूत्पादन, दोहराव और प्रसार का कार्य उपनिवेश की जनता को सौंप दिया गया यह भारत में आधुनिकीकरण की शुरूआत थी।

## सुधार आन्दोलनों में शिक्षा की भूमिका

भारत में अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ के पीछे कई आशय थे और इन्हीं कारणों से उसके प्रसार को लगातार बढावा दिया गया। ईसाई मिशनरी मानते थे कि शिक्षा से भारतीयों के धर्म परिवर्तन के रास्ते खुलेंगे उपयोगितवादियों के लिए यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार करने में अत्यंत सहायक थी। अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके द्वारा निचले स्तर के प्रशासनिक पदों पर नियुक्त भारतीयों को प्रशिक्षित किया जाने लगा। इस प्रकार साम्राज्यवाद की इस शैक्षणिक परियोजना का उद्देश्य भारतीय प्रजा में उपनिवेशी शासन के लिए निष्ठा की भावना उत्पन्न करना था कि वे उसकी प्रभु द्वारा निर्धारित प्रकृति में और उसके सभ्यता–प्रसार के उद्देश्य में यकिन करें। एक नैतिक शिक्षा के रूप में भारत में इसका कार्यकलाप इतना उपयुक्त न था जितना ब्रिटेन में क्योंकि भारत में उदारवादी शिक्षा का भौतिक पुरस्कार समुचित नहीं था। शिक्षित भारतीयों ने इस ज्ञान को चुनिंदा ढंग से अपनाया और स्वयं उपनिवेशी शासन को चुनौती देने के लिए इसका उपयोग किया।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा की और आकर्षित होने वाले मुख्यतः मध्य और निम्न आय–समूह के हिन्दू स्वर्ण पुरूष थे जो तत्काल8ीन समय के परिवर्तनों के कारण आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए थे। इनमें से अधिकांश के लिए शिक्षा की एक कार्यकारी उपयोगिता कठिन समय में जीवन–रक्षा का साधन आर्थिक समृद्धि और शक्ति पाने का साधन थी यह केवल बौद्धिक ज्ञान का मार्ग भर नहीं थी। बाद में जब भौतिक आशा पूर्ण न हुई तो इन्हीं लोगों का ज्ञान उपनिवेशी राजसत्ता का सामना करने का सबसे अच्छा हथियार बन गया।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रमुख समर्थक जैसे बी.टी. मेककली ने बहुत पहले ही तर्क दिया था कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय युवकों को ऐसे विचारों से सम्पर्क कराया है जो खुलकरी ऐसी अनेक बुनियादी मान्यताओं को चुनौती देते थे जिन पर परम्परागत जीवनमूल्यों का आधार टिका हुआ था। इन नये विचारों ने शिक्षित भारतीयों के एक ऐसे बुद्धिवादी वर्ग को जन्म दिया जिन्होंने अपने समाज को एक ऐसी विचारधारा के मूल्यों पर परखना शुरू कर दिया जिसका आधार बुद्धि, उपयोगिता, प्रगति और न्याय था। अब भारत में एक ऐसा नागरिक समाज विकसित हो चुका था जो अपनी पहचान को एक भारतीय परम्परा के दायरे में

स्थापित करते हुए अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत जागरूक था। भारतीय समाज में सुधार की आवश्यकतरा पर अब अधिक जोर दिया जाने लगा क्योंकि इसमें प्रचलित सामाजिक रीति–रिवाज में धार्मिक विचार पतन शील सामंती समाज की पहचान लगते थे। इसलिए इस नवचेतना को भारतीय समाज में फैली सभी कुरीतियों और बुराइयों की समाप्ति के लिए आवश्यक माना गया।

यह नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग, तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानववाद से बहुत प्रभावित था इन्होंने धर्म को तर्क के दण्ड से मापा और प्रयत्न किया कि जो परम्परागत विश्वास है या तो उन्हें बदला जाये या फिर उनके लिए कोई तर्कसंगत कारण खोजा जाये। इन नवीन विचारों के विक्षोभ ने भारतीय संस्कृति में एक प्रसार की भावना उत्पन्न की। संस्कृति के अध्ययन, प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद और मुद्राणालयों के विस्तार के कारण लोगों के ज्ञान का विस्तार हुआ जिसके कारण भारत में पुनर्जागरण की भावना आई। भारतीय बुद्धिजीवियों ने देश के अतीत को तर्क के आधार पर परखना प्रारम्भ किया जिसके कारण देश में धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन जिसको भारत का पुनर्जागरण भी कहा जाता है, प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन ने भारत की तात्कालिक जडता को समाप्त किया। इसने जहॉ एक और धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसमान और आत्मगौरव की भावना जगाई।

**प्रमुख आन्दोलनः**

इस प्रकार 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप विकसित बुद्धिजीवी वर्ग ने देश में सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व किया। इन आंदोलनों के नेतृत्व देने वाले प्रमुख संगठनों का विवरण निम्न प्रकार से है–

**ब्रह्म समाज (ब्रह्म की सभा)–**

पहला सुधार आन्दोलन ब्रह्म समाज था जिस पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव था। इसके प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। इसी कारण इन्हें भारत के नवजागरण का अग्रदूत, सुधार आंदोलन का प्रवर्तक एवं आधुनिक भारत का प्रथम महान नेता माना जाता है। एक और उन्होंने ईसाई पादरी प्रचारकों के विरूद्ध हिन्दू धर्म की रक्षा की वही दूसरी ओर हिन्दू धर्म में आए झूठ व अन्धविश्वासों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उनका मानना था कि अपने पुनरूद्धार के लिए भारतीय पश्चिम के युक्तिसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानव गरिमा तथा सामाजिक एकता के सिद्धांत को स्वीकार करें। इस प्रकार उन्होंने पश्चिम के आधुनिक ज्ञान, विचार और दृष्टिकोण का समर्थन किया और उन्हें जानने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की जबर्दस्त तरफदारी की अपने विशद ज्ञान और वैज्ञानिक व प्रगतिशील दृष्टिकोण की सहायता से उन्होंने हिन्दू धर्म में उत्पन्न कुरीतियों एवं आडम्बरों पर गंभीर प्रहार किये। मूर्तिपूजा की आलोचना करते हुए सप्रमाण यह बताया कि हिन्दुओं के सभी प्राचीन मौलिक धर्मग्रंथों ने एक ब्रह्म का उपदेश दिया है। इसके समर्थन में उन्होंने वेदो और पांच मुख्य उपनिषदों का बंगला भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों का विरोध किया और पंडित पुरोहितों पर तीखा प्रहार किया। उनके अनुसार यदि काई भी दर्शन, परम्परा आदि तर्क पर खरे न उतरे और वे समाज के लिए उपयोगी न हो तो मनुष्य को उन्हें त्याग देना चाहिए। वे संसार के सभी धर्मों की मौलिक एकता को स्वीकार करते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की और अपनी मानव सेवा के लिए उपनिषदों से पर्याप्त मात्रा में आधार खोज निकाले। ईसाई मत को अस्वीकार कर दिया परन्तु यूरोपीय मानववाद को स्वीकार किया। सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज की कुरीतियों, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वैश्यागमन, जातिप्रथा, छुआछूत इत्यादि का विरोध किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा राममोहन राय ने पूर्व और पश्चिम के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

20 अगस्त, 1828 ई. में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। 1830 ई. में लिखे हुए प्रन्यासकरण पत्र ( जतनेज कममक) में इस समाज का उद्देश्य शाश्वत सर्वाधार, अपरिवर्त्य ईश्वर की पूजा है जो सम्पूर्ण विश्व का कर्ता और रक्षक है। इसका उद्देश्य राजा राममोहन राय की मान्यताओं के अनुरूप हिन्दू धर्म में सुधार लाना था समाज के सिद्धांतों और दृष्टिकोण के मुख्य आधार मानव विवके, वेद और उपनिषद थे। इकसे कार्यक्रम में हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीनों धर्मों के गुणों को शामिल किया जाता था।

राजा राममरोहन राय के चिन्तन एवं गतिविधि का क्षेत्र केवल धर्म ही नहीं था उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी सुधारों की नींव रखी

वस्तुतः धार्मिक एवं सामाजिक सुधार एक–दूसरे से जुडे हुए थे। उन्होंने सतप्रथा के विरूद्ध ऐतिहासिक आन्दोलन चलाया और उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही कम्पनी सरकार ने सती प्रथा को 1829 ई. में गैरकानूनी घोषित कर दिया। वे स्त्रियों के अधिकार के भी समर्थक थे उन्होंने बहुविवाह का विरोध किया और स्त्रियों के आर्थिक अधिकारें की वकालत की। वे आधुनिक शिक्षा के प्रारम्भिक समर्थक और प्रचारकों में से एक थे उन्होंने कलकत्ता में डेविड हेयर की सहायता से हिन्दू कॉलेज की स्थापना की। 1825 ई. में उन्होंने वेदांत कॉलेज की स्थापना की जिसमें भारतविधा के अतिरिक्त सामाजिक एवं भौतिक विज्ञानों का भी अध्ययन करवाया जाता था। राजा राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता के भी अग्रदूत थे। उन्होंने बंगाली पत्रिका संवाद कौमुदी का प्रकाशन किया। 1833 ई. में उन्होंने समचार–पत्रां के नियमन के विरूद्ध आंदोलन चलाया। 1835 ई. में समाचार पत्रों को जो थोडी बहुत स्वतंत्रता मिली वह उनके आन्दोलन का ही परिणाम था।

राजा राममोहन राय उदारवादी राजनीतिक विचारों के पोषक थे। अतः उन्होंने आमूल परिवर्तन के स्थान पर भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए आन्दोलन किया। उन्होंने भारतीयों में राजनीतिक जागरण पैदा करने का भी प्रयास किया उन्होंने वरिष्ठ सेवाओं के भारतीयकरण, कार्यपालिका से पृथक करने, जूरी द्वारा न्याय और भारतीयों एवं यूरोपियनों के मध्य न्यायिक समानता की भी मांग की। वे अन्तर्राष्ट्रीयता और विभिन्न राष्ट्रों के मध्य सहयोग की भावना के समर्थक थे। बताया जाता है कि 1821 ई. में वे नेपल्स में क्रांति की असफलता की खबर से बहुत दुखी हुए थे परन्तु 1823 ई. में जब स्पेनिश क्रांति सफल हुई तो उन्होंने इस खुशी को एक सार्वजनिक भोज देकर मनाया। 1833 ई. में उनकी इंग्लैण्ड में अचानक मृत्यु हो जाने के कारण ब्रह्म समाज के संगठन एवं कार्यों में शिथिलता आ गई। महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर के 1843 ई. में नेतृत्व संभालने के प्श्चात इसमें नई जान आई। बाद में देवेन्द्र नज्ञथ टैगोर ने केशव चन्द्र सैन को ब्रह्म समाज का आचार्य नियुक्त किया। केशव चन्द्र सैन की शक्ति, वाकपटुता और उदारवादी विचारों ने इस आंदोलन को लोकप्रिय बना दिया और शीघ्र ही इसकी शाखाएं बंगाल से बाहर उत्तरप्रदेश, पंजाब और मद्रास में खोल दी गई। परन्तु उनके उदारवाद के कारण ब्रह्म समाज में फूट पड गई और देवेन्द्र नाथ टैगोर ने 1865 ई. में केशव चन्द्र सेन को आचार्य पदवी से हटा दिया। केशव चन्द्र सेन ने एक नवीन ब्रह्म समाज का गठन कर लिया जिसे उन्होंने आदि ब्रह्म समाज का नाम दिया। 1878 ई. में इसमें दुबारा विभाजन हुआ और केशव चन्द्र सेन के अनुयायियों ने उनसे अलग होकर साधारण ब्रह्म समाज की स्थापना कर ली।

ब्रह्म समाज ने भारतीय पुनर्जागरण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने बहुत से अन्धविश्वासों तथा हठधर्म को अस्वीकार कर दिया। विदेश यात्रा पर समकालीन प्रतिबन्धों को चुनौती दी। बहु विवाह, सती–प्रथा, बाल–विवाह तथा पर्दा–प्रथा को समाप्त करने के लिए तथा विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्न किया। इन्होंने जाति–प्रथा तथा अस्पृश्यता को भी समाप्त करने का प्रयास किया। ब्रह्म समाज ने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था, अवतारवाद आदि की जमकर आलोचना की।

**प्रार्थना समाज**

1867 ई. में केशव चन्द्र की प्रेरणा से बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इस समाज का उद्घाटन डॉ. आत्माराम पांडुरंग के नेतृत्व में हुआ था। दो वर्ष बाद इसमें प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान आर.जी.भंडारकर और महादेव गोविन्द रानाडे सम्मिलित हुए जिससे समाज को नई शक्ति मिली। समाज सुधार में उनके चार प्रमुख उद्देश्य थे– 1. जाति–पाती का विरोध 2. पुरूषों और महिलाओं की विवाह की आयु बढाना 3. विधवा पुनर्विवाह 4. महिला शिक्षा। अछूतों, दलितों तथा पीडितों की दशा सुधारने के उद्देश्य से इसने कई कल्याणकारी संस्थाओं का गठन किया जैसे– दलित जाति मण्डल, समाज सेवा संघ तथा दक्कन शिक्षा सभा यह समाज साधारण ब्रह्म समाज से प्रभावित था परन्तु प्रार्थना सामाजियों ने स्वयं किसी नवीन धर्म अथवा हिन्दू धर्म के बाहर किसी नवीन समानांतर मत का अनुयायी नहीं माना अपितु उन्होंने समाज को मुख्य हिन्दू धर्म के अन्दर ही रखकर सुधारों के लिए आन्दोलन किया। उनके अनुसार मूल परम्परागत हिन्दू धर्म से पृथक हुए बिना भी सुधार सम्भव है। पंजाब में दयाल सिंह प्रन्यास ने इस समाज के विचारों के प्रसार के लिए 1910 ई. में दयालसिंह कॉलेज खोला। प्रार्थना समाजी आधुनिक विचारों के माध्यम से मात्र सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे, सामाजिक जीवन का आमूल परिवर्तन नहीं। इसी कारण उनका कट्टरपंथियों से ज्यादा संघर्ष नहीं हुआ और उनके सुधारों को शीघ्र एवं आसानी से स्वीकृति मिली।

**आर्य समाज–**

आर्य समाज आन्दोलन का प्रसार प्रायः पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। इसकी स्थापना 10 अप्रैल, 1875 ई. को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में की थी। निरंतरता और प्रभाव की दृष्टि से यह आन्दोलन अपने समय में और आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय था। इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुनः स्थापना करना था जो अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियां कालांतर में हिन्दू समाज में प्रवेश कर गई थी उनको समूल जड से नष्ट करना था। आर्य समाज की स्थापना से पूर्व स्वामी दयानन्द ने 1863 ई. में झूठे धर्मों का खण्डन करने के लिए पाखंड खंडिनी पताका लहराई 1877 ई. में लाहौर में आर्य समाज की स्थापना के पश्चात इसका अधिक प्रचार–प्रसार हुआ स्वामी दयानद ने पुनः वेदों की ओर चलो (ठंबा ज्व जैम टमकें) का नारा लगाया। इनका उद्देश्य था कि भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। प्रारम्भ में इन्होंने शास्त्रार्थ व सामूहिक भोज के माध्यम से अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया परन्तु बाद में किताबें लिखकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया। सत्यार्थ प्रकाश इनकी सब से महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसमें इन्होंने अपने मूल विचारों को व्यक्त किया।

धार्मिक क्षेत्र में स्वामी दयानंद ने बहुदेववाद, मूर्तिवाद, पशुबलि, श्राद्ध, तंत्र–मंत्र तथा झूठे कर्मकांडों का विरोध किया। उनके अनुासर वेद ही हिन्दू धर्म का वास्तविक आधरार, शेष सभी धार्मिक विचार जो वेद संगत नहीं है वे त्याज्य है। उन्होंने अद्वैतवाद दर्शन को शुद्ध वैदिक परंपरा के विपरीत बनाया। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ऋत (शाश्वत मानव धर्म) के अनुसार ही आचरण करमके मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिये। इस तरह से उन्होंने एकत्ववाद ( डव्छैप्ड) और नियति ( ।त्म्क्म्ज्म्त्डप्छ ।ज्प्छ) दोनों को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने मनुष्य को कर्मशील बनाने पर जोर दिया। आर्य समाज सामाजिक सुधार का भी बहुत बडा माध्यम बना। स्वामी दयानंद भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक थे जिन्होंने शूद्रों तथा महिलाओं को वेद पढने तथा शिक्षा प्राप्त करने व यज्ञोपवति धारण करने की पैरवी की। उन्होंने जाति प्रथा तथा छूआछूत का विरोध किया और सामाजिक समानता एवं एकता को अपना आदर्श माना। उन्होंने बाल–विवाह शाश्वत वैधव्य, पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह, वैश्या–गमन, देवदासी–प्रथा, आदि सामाजिक बुराइयों का प्रबल विरोध किया।

आर्य समाज का सबसे अधिक प्रभावशाली और स्थायी कार्य शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। इसने शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर सबसे अधिक जोर दिया। 1886 ई. में लाहोर में दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल की स्थापना हुई थी जो 1889 ई. मे दयानंद एंग्लों कॉलेज में बदल गया। आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं में प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान का सवोत्तम समन्वय देखने को मिलता है। 1892–93 ई. में पश्चिमी पद्धति को लेकर समाज में दो दल बन गए और परम्परागत पद्धति से शिक्षा देने के लिए 1902 ई. में हरिद्वार में एक गुरूकुल विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी।

इस प्रकार हम देखते है कि आर्य समाज आन्दोलन ने न केवल धार्मिक सुधार आन्दोलन चलाया अपितु सामाजिक एकता, आपसी सहयोग और बहुमुखी जागरण का सन्देश दिया। अतीत में स्वर्ण युग की धारणा ने भारतीयों में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का भाव जाग्रत किया। आर्थिक विचारों में विदेशी का विशेष महत्व था। स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते थे कि बुरे से बुरा देशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है अर्थात वे स्वराज के पक्षधर थे।

**रामकृष्ण मिशन–**

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरू रामकृष्ण की स्मृति में 1897 ई. में की थी। रामकृष्ण परंपरागत तरीके से सन्यास, ध्यान और भक्ति के द्वारा माक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखते थे। परन्तु वह चिन्ह और कर्मकाण्ड की अपेक्षा आत्मा पर अधिक बल देते थे। वे सभी धर्मों की मौलिक एकता में विश्वास करते थे और मानव सेवा को ही ईश्वर की सेवा मानते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात उनकी शिक्षाओं की व्याख्या को साकार करने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को जाता है। उन्होंने 1893 ई. में शिकांगों में पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन में अपना सुप्रसिद्ध भाषण दिया इस भाषण से उन्होंने विश्व में पहली बार भारतीय संस्कृति की महता को प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया। उनके भाषण का सार यह था कि हमें पश्चिम के भौतिकवाद और पूर्व के अध्यात्मकवाद का सामंजस्यपूर्ण समिश्रण करके एक अदभुद संस्कृति का निर्माण करना चाहिए। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म के इस पक्ष कि मुझे मत छेडो की बहुत आलोचना की। उनके अनुसार ईश्वर की पूजा मानवता की सेवा द्वारा ही की जा सकती है इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म को एक नवीन सामाजिक उद्देश्य प्रदान किया। यही कारण है कि रामकृष्ण मिशन के कार्यों का

मानवतावादी पक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा और मिशन के केन्द्र समाज सेवा एवं परोपकार में वर्तमान में भी लगे हुए हैं तथा विद्यालयों, अस्पतालों धर्मार्थ औषधालयों इत्यादि का संचालन कर रहे हैं, स्वामी विवेकानन्द ने अपने लेखों तथा भाषणों द्वारा नवीन पीढी में अपने अतीत में आत्मगौरव की भावना जगाई और भारतीय संस्कृति में नया विश्वास तथा भारत के भविष्य में एक नया आत्मविश्वास नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार हम विवेकानन्द को राष्ट्रीय आन्दोलन करा आध्यात्मिक पिता कह सकते हैं।

**अलीगढ आन्दोलन–**

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना होने से मुस्लिमों के एक बडे वर्ग का विशेषाधिकार उनसे छिन गया साथ ही अंग्रेजों की मुस्लिम विरोधी नीति और मुसलमानों के आधुनिक शिक्षा के प्रति पूर्वाग्रह ने उनकी भौतिक संवृदि के सभी अवसर समाप्त कर दिये ऐसे समय में ही सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समाज को एक नई राज दिखाई। 1857 ई. के गदर के समय वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की न्यायिक सेवा में थे उन्होंने मुस्लिम समाज को आधुनिक बनाने का प्रयास किया उनका प्रयास रहा कि मुसलमान ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व को स्वीकार कर उनके अधीन नौकरी करना आरम्भ कर दें जिससे वे अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा सके।

वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारेा से प्रभावित थे और अपने विचारों के प्रचार के लिए तहजीब–उल–अखलाक (सभ्यता और नैतिकता) नामक पत्रिका निकाली। उनके अनुसार ईस्लाम धर्म के लिए केवल एकमात्र मान्य ग्रंथ कुरान है, उनके अनुसार कुरार की कोई भी व्याख्या जो मानव–विवके और विज्ञान के विरूद्ध हो, सही नहीं है। उन्होंने परम्पराओं के अंधाधुंध अनुसरण, रूढिवादी रीति–रिवाजों, अज्ञान और विवेकहीनता की भी आलोचना की। उन्होंने धार्मिक कट्टरता, मानसिक संकीर्णता और अलगाववाद का भी विरोध किया और मुसलमानों को सहनशील और उदार बनने के लिए कहा। सैयद अहमद धार्मिक सहिष्णुआ और सभी धर्मों की एकता में विश्वास रखते थे वे सम्प्रदायिक टकराव के विरोधी थे परन्तु अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे अंग्रेजों के समर्थ बन गये थे और मुस्लिम समुदाय को राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रहने की सलाह देने लग गए थे।

सैयद अहमद खां पश्चिम के आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और विचारों का महत्व समझते थे इसलिए आजीवन आधुनिक शिक्षा के प्रसार में लगे रहे। 1864 ई. में उन्होंने एक साईंटिफिक सोसायटी की स्थापना की जिसने अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों का उर्दू अनुवाद प्रकाशित करवाया। उन्होंने 1875 ई. में अलीगढ में एक मुस्लिम एंग्लो ओरियन्टल स्कूल स्थापित किया जो आगे चलकर 1920 ई. में अलीगढ विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ कालान्तर में यह भारतीय मुस्लिमों का सबसे महत्वपूर्ण शैक्षिक संस्थान बन गया। संक्षेप में हम कह सकते है कि सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समुदाय को मध्यकालीन माहौल से बाहर निकालकर आधुनिक युग के मार्ग की और अग्रसर किया।

**थिओसोपिफकल सभा–**

धर्म को समाज–सेवा का मुख्य साधन बनाने और धामिक भातृभाव के प्रचार और प्रसार हेतु 1875 ई. में अमेरिका में मेडम एच. पी.ब्लावेट्स्की और कर्नल हेनरी स्टील ऑलकॉट ने की थी 1882 ई. में उन्होंने इसका मुख्य कार्यालय मद्रास के समीप अडयार नामक स्थान पर स्थापित कर दिया। इस सभा के अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान को आत्मिक हर्षोन्माद और अन्तदृष्टि द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करते थे। वे पुनजर्न्म और कर्म में विश्वास रखते हुए सांख्य तथा उपनिषदों के दर्शन द्वारा प्रेरणा प्राप्त करते थे। वे विश्वबन्धुता की भावना के समर्थक थे। 1907 ई. में श्रीमती एनी बिसेंट के अध्यक्ष बनने पर यह सभा काफी लोकप्रिय हो गई भारत में थिओसोफिकल सभा इनके नेतृत्व में हिन्दू पुनर्जागरण का आन्दोलन बन गई यह सभा हिन्दू धार्मिक पुनरूत्थान, समाज सुधार, शैक्षिक विकास और राष्ट्रवादी चेतना को जाग्रत करने में सफल रही श्रीमती बिसेंट ने 1898 ई. में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की जहाँ विद्यार्थियों को हिन्दू धर्म और पाश्चात्य वैज्ञानिक विषय पढाए जाते थे कालान्तर में यह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बना उन्होंने आयरलैंड की होम रूल लीग के आधार पर 1916 ई. में भारतीय स्वराज लीग बनाई जिसने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में मदत की।

**सिक्ख सुधार आन्दोलन–**

आधुनिक शिक्षा और तर्कसंगत विचारों से सिक्ख सम्प्रदाय भी प्रभावित हुआ सिक्खों में धार्मिक सुधार की शुरूआत अमृतसर में

खालसा कॉलेज की स्थापना से होती है। अमृतसर में सिंह सभा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ सिंह सभा का ही संघटक अकाली आंदोलन था जो 1920 ई. में शुरू हुआ और इसके कारण ही बाध्य होकर ब्रिटिश सरकार को 1922 ई. सिक्ख गुरूद्वारा एक्ट पारित करना पडा जिसे 1925 ई. में संशोधिक किया गया इस एक्ट से ही गुरुद्वारों को भ्रष्ट एवं स्वार्थी महंतों से मुक्ति मिल पाई।

**पारसी सुधार आन्दोलन–**

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कुछ पारसियों– नौरोजी फरदोनजी, दादा भाई नौरोजी, आर.के. कामा, एस.एस. बंगाली आदि ने 1851 ई. में रहनुमाए मजदास्यान समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य पारसियों की सामाजिक अवस्था का पुनरुद्दार करना और पारसी धर्म की पुनः प्राचीन शुद्धता प्राप्त करना था इसके लिए रास्त गोफतार नामक पत्रिका निकाली गई। महिलाओं की शिक्षा, विवाह एवं समाज में उनकी स्थिति को सुधारने के प्रयास किए गए पर्दा प्रथा समाप्त कर दी गई विवाह की आयु बढा दी गई तथा स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया। अन्ततः पारसी भारतीय समाज के सबसे आधुनिक वर्ग में बदल गए।

**आलोचनात्मक परीक्षण–**

19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों ने भारतीय समाज पर अपना व्यापक प्रभाव छोडा परन्तु इसके कुछ प्रभाव दीर्घकालीन हितों की दृष्टि से नकारात्मक रहे इन नकारात्मक प्रभावों में सबसे महत्वपूर्ण था कि धार्मिक पुनरुत्थान आन्दोलनों का उभार जिसने जहाँ एक और धर्मों के अन्दर सुधार की प्रक्रिया की धीमा किया वही दूसरी ओर अंतर–धार्मिक सहिष्णुता की भावना को कमजोर करने का कार्य किया। इसी दौर में धार्मिक कटुता में वृद्धि हुई और इसी धार्मिक कटुता के कारण भारत में धार्मिक अलगाववाद को बढावा मिला जिसकी परिणति अन्ततः साम्प्रदायिक आधार पर देश के बंटवारे के रूप में सामने आई। इन सुधार आंदोलनों का प्रभाव बहुत संकीर्ण सामाजिक क्षेत्र तक सीमित था क्योंकि सुधार की भावना एक छोटे से कुलीन वर्ग को ही प्रभावित करती थी जो मुख्यतः उपनिवेशी शासन के आर्थिक और सामाजिक लाभार्थियों का समूह था। ये आन्दोलन भारत की आम जनता को अपने साथ नहीं ले जाए और मुख्यतः शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहे। बंगाल का सुधार आन्दोलन पश्चिम शिक्षा प्राप्त कुलीनों की एक छोटी–सी संख्या तक ही सीमित था जिनको भद्रलोक के नाम से जाना जाता था। सुधारकों ने सुधार की प्रक्रिया को कभी तजनता तक ले जाने का प्रयास नहीं किया जैसे राजा राममोहन राय के गध की ठेठ संस्कृतमय बंगला भाषा अशिक्षित किसानों और दस्तकारों की समझ से परे ही रही। इसी प्रकार पश्चिमी भारत में प्रार्थना समाज के सदस्य पश्चिमी शिक्षा प्राप्त चितपावन और सारस्वती ब्राह्मण, कुछ गुजराती सौदागर और पारसी समुदाय के कुछ लोग थे। मद्रास प्रेसिडेंसीप में जहाँ पश्चिमी शिक्षा की प्रगति बहुत धीमी रही और ब्राह्मणों का जातिगत वर्चस्व अप्रभावित रहा और सुधार के विचार भी बहुत देर से आये वास्तव में 19वीं सदी के आंशिक वर्षों के सुधारवादी आन्दोलनों का स्वर्ण चरित्र ही जाति के प्रश्न पर अपनी सापेक्ष चुप्पी की काफी हद तक व्याख्या करता है। आधारभूत स्तर पर एक सुधारवादी सामाजिक चेतना पैदा करने की कोई खास कोशिश नहीं की गई जिसके कारण आगे चलकर धार्मिक पुनरुत्थाना को एक उपजाऊ जमीन इसी स्तर पर मिली। समाज सुधारों का चरित्र औपनिवेशिक था। औपनिवेशिक धारणा थी कि भारतीय समाज का मूल आधार धर्म है और यह धर्म ग्रंथों में निहित है तथा भारतीय समाज पूरी तरह से ग्रंथों की अधीनता स्वीकार करता है। इसी कारण भारतीय सुधारकों और उनके विरोधियों ने अपने–अपने पक्ष के समर्थन में प्राचीन धर्म ग्रंथों का ही उल्लेख किया उनके लिए किसी पक्ष की निर्ममता या अनेचित्य या सुधार अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। इसी कारण रहा की भारत में सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन समाज के निम्न तबके तक पहुचने में नाकाम रहे।

**निष्कर्ष–**

ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय समाज अपनी पहचान के संकट से गुजर रहा था विदेशी शासन और आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने हमारी प्राचीन परम्पराओं, रिति–रिवाजों को तर्क की कसौटी पर तौलना प्रारम्भ कर दिया जिससे यह आवश्यक हो गया कि इनमें आवश्यक सुधार किया जाये किसी भी राष्ट्र में समाज की मान्यताएं तत्कालीन समय की परम्पराओं को दर्शाती है। परन्तु समय के साथ इनमें यदि परिवर्तन नहीं होता है तो धर्म का हिस्सा मान ली जाती है जो आगे चलकर रूढिवादिता को बढावा देती है। भारत एक विविधतापूर्ण समाज वाला देश है जहाँ सामाजिक नियम धार्मिक मूल्यों पर आधारित होते हैं अतः किसी भी अपेक्षित परिवर्तन के लिए धार्मिक सुधार सबसे जरूरी होता है अतः भारत में हुए सामाजिक–धार्मिक

आन्दोलनों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की जिससे भविष्य में भारतीय समाज में होने वाले उदारवादी लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में बहुत सहायता मिली। इन सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में आत्मविश्वास, स्वाभिमान और अतीत के प्रति गौरव का भाव जाग्रत किया तथा भारतीयों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध एकत्र कर स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

***व्याख्याता, इतिहास**
**राज. कला महा. सीकर**
****व्याख्याता, इतिहास**
**राज. कला महा. दौसा**

**संदर्भ ग्रंथ सूची–**

1. Ali, aruna Asaj.1991-The Resurgence of Indian women London, sangam books
2. Bandopadhyay, shekhar, 1995- Caste, widow- Remarriage and the reform of popular culture in colonial Bengal. In form the seams of history : essay on Indian women, ed. Bharati ray, 8-9, delhi oxford university press.
3. Bandopadhyay , shekhar.2016- From Plassey to partitions A history of modern india, New delhi. Orient black- swan.
4. Boyee, D.G. 1999 – Decolonisation and the british empire, 1975- 1997, Basingstoke ; macmillan.
5. Desai, A.R.2002 – Social background of Indian nationalism, Delhi: Popular Prakshan.
6. Ghosh, S.C.1995 –The history of education in modern india, 1757-1986, Hyderabad ; orient longman.
7. Joshi, V.C.(ed.)- ram mohan ray and process of modernization in india, new delhi ; vikas.
8. Ray, Bharati (ed.),1995- from the seams of history : essay on Indian women, delhi : oxford university press.

9- सुमित सरकार, 1985–ए क्रिटीक्यू कोलोनियल इण्डिया, कलकत्ता : पायरस

10. Natrajan, S- A century of social reforms in india
11. Ranade, M.G- religious and social reforms
12. Zacharias, H.C.E- renascent india
13. Narian, V.N- social history of india- nineteenth century
14. Heimsath, C.H. – india nationalism and social reform

15. अवस्थी एवं अवस्थी, 1976 – आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन
16. सरकार, सुमित, 1984– आधुनिक भारत, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड
17. चन्द्र, विपिन, 2002– आधुनिक भारत, पेगुन प्रकाशन
18. बिरमानी, आर.सी., 2009 – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद गीतांजलि प्रकाशन
19. मजुमदार, बी.बी., 1998– भारत में आतंकवादी राष्ट्रवाद और उसके सामाजिक–धार्मिक पृष्ठभूमि
20. राय. हिमांशु (संपा), 2003 – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद एक अध्ययन हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय